मेरु : सृष्टि–केन्द्र की आर्ष अवधारणा के गणितीय प्रमाण

– ***विनय झा*** *(आदि शङ्कराचार्य के पुरी स्थित गोवर्धनमठ के पञ्चाङ्गकार)*

सृष्टि–केन्द्र सम्बन्धी आधुनिक मत

आधुनिक वैज्ञानिकों को ब्रह्माण्ड के केन्द्र का ज्ञान नहीं है। भौतिक ब्रह्माण्ड का कोई निरपेक्ष केन्द्र आइंसटाइन के सापेक्षतावाद सिद्धान्तानुसार हो ही नहीं सकता, क्योंकि ऐसा कोई निरपेक्ष देश–काल का सन्दर्भ नहीं है जिसके सापेक्ष भौतिक प्रणालियों को मापा जा सके। किन्तु हाल में 'बैकग्राउण्ड रेडियेशन' की खोज द्वारा 'बिग बैङ्ग' सिद्धान्त को बल मिला है, जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड का आरम्भ कुछ अरब वर्ष पूर्व हुआ था। चूँकि वर्तमान ब्रह्माण्ड काल में अनन्त नहीं है, इसका आरम्भ कभी न कभी हुआ था, तो इसका देश भी अनन्त नहीं हो सकता, क्योंकि सापेक्षतावाद के अनुसार देश और काल परस्पर अभिन्न रूप से जुड़े हुये हैं जो दिक्काल या स्पेस–टाइम–कॉण्टीन्यूम कहलाता है। अनन्त वस्तु ही केन्द्रहीन हो सकती है। चूँकि ब्रह्माण्ड देश और काल में सान्त (finite) है, इसका कोई न कोई आकार होना चाहिये और उस आकृति का कहीं न कहीं केन्द्र होना ही चाहिये, भले ही सापेक्षतावाद की कसौटी पर वह केन्द्र निरपेक्ष और सनातन न हो। यह भी नहीं भूलना चाहिये कि सापेक्षतावाद की कसौटी केवल भौतिक विश्व के लिये है, जो भारत की आर्ष मान्यता के अनुसार शाश्वत नहीं है। अब वैज्ञानिक भी मानते हैं कि सूर्यकेन्द्रवाद एवं भूकेन्द्र –वाद अपने–अपने सन्दर्भ के दायरे (frame of reference) में ठीक हैं, महत्व केवल इसका है कि गणित सही होना चाहिये। रिचर्ड फिट्जगेरल्ड (टेक्सस विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर) टॉलेमी के अलमाजेस्ट का आधुनिकीकरण करने के प्रयास (A Modern Almagest) में लिखते हैं : "the fact that the model described in Almagest is geocentric in nature is a non-issue, since **the earth is stationary in its own frame of reference**". आर्ष मान्यता के अनुसार सृष्टि के केन्द्र और उसके प्रमाण की जाँच प्रस्तुत लेख का विषय है, जो ज्योतिष के **सिद्धान्त** स्कन्ध में आता है।

सिद्धान्त–ज्योतिष की अवनति

ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ द्वारा ज्या–चापादि के बिना पञ्चाङ्गनिमार्ण की लाघव या शार्टकट विधि का प्रचार करने के पश्चात ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध में लोगों की रुचि समाप्त हो गई और कालान्तर में सिद्धान्त–गणित की अनेक प्रक्रियाओं का ज्ञान भी लोग भूल गये। दुर्भाग्यवश भारतीय सिद्धान्त–गणित को अन्धयुग में धकेलने वाली यह ग्रहलाघवीय अपक्रान्ति उस काल में हुई जब यूरोप में पुनर्जागरण आरम्भ हो रहा था। हिन्दुओं के दासत्व का काल था, सिद्धान्त के पक्षधर मकरन्दाचार्य और कमलाकर भट्ट जैसे विद्वान थे भी तो उनकी एक नहीं चली। कमलाकर भट्ट के भाई दिवाकर दैवज्ञ ने कमलाकर भट्ट की नहीं सुनी और मकरन्द पद्धति से मन्दफलार्द्ध को त्याग कर सिद्धान्त की अन्तिम रूप से हत्या कर दी, यद्यपि मन्दफलार्द्ध के बिना सैद्धान्तिक ग्रहकक्षा की व्याख्या सम्भव नहीं है। मन्दफलार्द्ध को त्यागने की वकालत सबसे पहले ग्रहलाघव ने ही आरम्भ की। ग्रहलाघव का तीसरा योगदान था सूर्यसिद्धान्त के विरुद्ध वातावरण तैयार करना और फलादेश के स्थान पर भौतिक ग्रहपिण्डों के वेध को प्रमाण मानना। ग्रहलाघव से प्रभावित होकर मूल मकरन्द (सूर्यसिद्धान्तीय) पद्धति को विकृत करने वाले दिवाकर दैवज्ञ के पश्चात सूर्यसिद्धान्त की मौलिक विधि द्वारा पञ्चाङ्ग बनना बन्द हो गया, जिसका फल यह हुआ कि जब प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थों की भ्रामक व्याख्यायें विदेशी लेखकों और उनके देशी अनुचरों ने प्रकाशित करना आरम्भ किया तो उनका खण्डन नहीं हो सका। शतियों तक प्राचीन शास्त्रों की अवहेलना का दुष्परिणाम यह हुआ कि जब अंग्रेजों ने भारतीय विद्याओं को विकृत करके झुठलाने का षडयन्त्र आरम्भ किया तो उनसे लोहा लेने का बौद्धिक सामर्थ्य भारत खो चुका था। राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात भी शास्त्र के क्षेत्र में खोया हुआ बौद्धिक सामर्थ्य नहीं लौटा, क्योंकि जिन प्राचीन विद्याओं का लोप हो चुका था उनकी पुनर्प्राप्ति और पुनर्स्थापना के प्रयास नहीं किये गये। भारत की मेधा पाश्चात्य विद्याओं की श्रेष्ठता में विश्वास करने लगी, कुछ मुट्ठी भर लोग प्राचीन

विद्याओं से चिपके रहे, किन्तु राज्याश्रय के अभाव और प्राचीनता के प्रति विकासवादियों की ऋणात्मक मनोवृति के कारण प्राचीन विद्याओं के पुनरुत्थान हेतु ईमानदारी से सुनियोजित और सङ्गठित प्रयास नहीं किया गया। किन्तु ऐसे साक्ष्यों की कमी नहीं जो आर्ष ज्ञान को पुनर्जीवित करने में सक्षम हैं। आवश्यकता केवल इसकी है कि इन साक्ष्यों की निष्पक्ष रूप से जाँच की जाय। ऐसे एक साक्ष्य का प्रस्तुत लेख में स्पष्टीकरण किया गया है।

आर्ष मेरुकेन्द्रवाद

पश्चिम में क्लाउडियस **टॉलेमी** का वर्चस्व १४ शतियों तक रहा।पाश्चात्य लेखकों एवं उनके भूरे शिष्यों की जिद है कि टॉलेमी और अन्य पाश्चात्य विद्वानों से ही भारत ने ज्योतिष सीखा। ऐसे लोग आज भी असत्य प्रचार कर रहें हैं कि भारतीय ज्योतिष भूकेन्द्रित था और टॉलेमी के आधार पर ही सूर्यसिद्धान्त की रचना हुई। प्रस्तुत लेख में ऐसे गणितीय प्रमाण दिये गये हैं जो सिद्ध करते हैं कि सच्चाई उक्त प्रचार के विपरीत है : भारतीय पौराणिक–सैद्धान्तिक ज्योतिष पूर्णतया मौलिक है तथा टॉलेमी जैसे परवर्ती लेखकों के सिद्धान्त इसी पर प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से आधारित थे।

पाश्चात्य लेखकों एवं उनके अनुचरों द्वारा मेरु की चर्चा भी नहीं की जाती, यद्यपि पुराणों और महाकाव्यों तथा जैन साहित्य में ब्रह्माण्ड का केन्द्र मेरु पर्वत पर होने की बात बारम्बार कही गई है। इन साहित्यिक साक्ष्यों को कपोर कल्पना कहकर हँसी में उड़ा दिया जाता है, प्राचीन गणित को समझने का प्रयास भी नहीं किया जाता।

सौरपक्ष बनाम दृक्पक्ष : सूर्यक्रान्तिसूत्र का प्रमाण

सूर्यसिद्धान्त के अध्याय–३ 'त्रिप्रश्नाधिकार' में लग्नानयन एवं सम्बन्धित विषयों का वर्णन है। लग्न के सूत्र की सही व्याख्या भाष्यकारों ने की, किन्तु इस सूत्र की ज्यामितीय उपपत्ति ढूँढने और ब्रह्माण्ड के प्राचीन गणित से उसकी तुलना करने का प्रयास किसी ने नहीं किया। सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र द्वारा ही आधुनिक दृग्गणित के समर्थक भी क्रान्ति आदि की गणना करते हैं, किन्तु वे प्राचीन सूत्र में परमक्रान्ति का मान बदल देते हैं और इस आधार पर सूर्यसिद्धान्त को अशुद्ध कहते हैं। चूँकि लग्न के सूत्र में क्रान्ति की आवश्यकता पड़ती है, आरम्भ क्रान्ति से ही किया जाय।

सूर्यसिद्धान्तीय परमक्रान्ति का मान २४° अंश है। इसकी ज्या (sine) में परमक्रान्ति के आधे १२°की कोज्या (cosine) से गुणा करें और फल का चाप लें तो आधुनिक दृक्पक्षीय परमक्रान्ति का मध्यमान २३°:२६′:३७.४८१२″प्राप्त होगा, जिसमें अक्षविचलन (न्यूटेशन) संस्कार करने पर भौतिक विज्ञान की स्पष्ट परमक्रान्ति का पूर्णतः शुद्ध मान मिल जायगा, जो एक स्थिराङ्क है। न्यूटेशन का मान १९ वर्षों में धन +१७.२३″ से –१७.२३″ विकला के बीच चलायमान रहता है। पूर्णाङ्कों पर आधारित सूर्यसिद्धान्तीय विधि द्वारा दृक्पक्षीय मान ज्ञात करने का यह आर्ष–गणित लोग भूल चुके हैं। परमक्रान्त्यर्ध १२° से गुणित करने का कारण यह है कि सूर्यसिद्धान्तीय भुवलोक के सूर्य–क्रान्तिवृत की तुलना में दृक्पक्षीय भौतिक क्रान्तिवृत १२° झुका हुआ है, अर्थात् अभौतिक और भौतिक दो सूर्य हैं जिनके भिन्न पथ हैं। ऐसा नहीं होता तो पूर्णाङ्क पर आधारित सौर सूत्र में १२° अंश की कोज्या से गुणा करने पर दृक्पक्षीय क्रान्ति की निष्पत्ति सम्भव नहीं होती।

सायनसूर्य की ज्या (भुजज्या) से परमक्रान्ति की ज्या (परज्या) को गुणित करें और फल का चाप लें (साइण्टिफिक कैलकुलेटर में inverse sine या $\sin^{-1}$),तात्कालिक इष्टस्थानीय सूर्य–क्रान्ति का शुद्ध मान मिल जायगा। इस सूत्र में यदि दृक्पक्षीय परमक्रान्ति का प्रयोग किया जाय तो फल दृक्पक्षीय इष्टक्रान्ति मिलेगा,और यदि सौर पक्षीय परमक्रान्ति का प्रयोग किया जाय तो फल सौरपक्षीय इष्टक्रान्ति मिलेगा,दोनों फल पूर्णतः शुद्ध मिलेंगे। जो लोग सौरपक्षीय अर्थात् सूर्यसिद्धान्तीय विधि द्वारा दृक्पक्षीय अर्थात् भौतिक क्रान्तिसाधन की आर्ष प्रक्रिया का ज्ञान नहीं रखते वे दृक्पक्षीय मान की सौरपक्ष से सीधे तुलना करते हैं और सौरपक्ष को अशुद्ध कह देते हैं। दृक्पक्षीय गणित भौतिक विज्ञान का क्षेत्र है, जबकि सूर्यसिद्धान्त ज्योतिष का सैद्धान्तिक आधार है।

सौरपक्ष बनाम दृक्पक्ष : साहित्यिक प्रमाण

दृक्पक्ष वह भौतिक लोक है जिसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जाता है और जिसे वेद में माया का सुनहला ढक्कन कहा गया है :

हिरण्मयेनपात्रेणसत्यस्यापिहितम्मुखम्।

योसावादित्येपुरुष: सोसावहम्॥ ॐखम्मब्रह्म॥

यह शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखा का अन्तिम मन्त्र है जिस कारण इस विचारधारा का नाम 'वेदान्त' पड़ा।सौरपक्ष से तात्पर्य है अभौतिक भुवलोक का जिसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता,जिसके केवल तीन ही उपाय हैं : शास्त्र (दिव्य आर्ष ग्रन्थ, यथा ज्योतिष के क्षेत्र में सूर्यसिद्धान्त), आप्त वचन और तप। उन्नीसवीं शती में एशियाटिक सोसाइटी के अध्यक्ष कोलब्रुक, विल्किन्सन, स्पॉटिसवुड, बर्जेस, जैसे पाश्चात्य 'भारतविदों' ने मनगढ़न्त आधारों पर झूठा प्रचार आरम्भ किया कि सूर्यसिद्धान्त प्राचीन काल में भौतिक ग्रहों का स्थूल मान दर्शाता था किन्तु अब आउट–ऑव–डेट हो चुका है। सच्चाई यह है कि दृक्पक्ष और सौरपक्ष में अन्तर प्राचीनतम काल से ही ऋषियों को ज्ञात था, जिसका एक उदाहरण है **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** में महर्षि वेद व्यास का वचन :

यन्त्रवेधादिना ज्ञातं यद् बीजं गणकैस्ततः।
ग्रहणादि परीक्षेत ***न तिथ्यादि कदाचन*** ॥

"यन्त्रादि द्वारा बीजगणना से ग्रहणादि जैसे दृश्य घटनाओं का परीक्षण करें, किन्तु *तिथ्यादि हेतु ऐसे दृक्तुल्य परीक्षण न करें।"*

ज्योतिष के अदृष्ट फल हेतु पञ्चाङ्गोपयोगी तिथ्यादि के निर्णय में दृग्गणित का ऋषियों ने निषेध किया था। अतः स्पष्ट है कि **वैदिक–पौराणिक काल में भी दृक्पक्ष तथा सौरपक्ष में अन्तर का ज्ञान ऋषियों को था, परन्तु ऋषियों ने ज्योतिष में सौरपक्ष के ही प्रयोग का आदेश दिया, यद्यपि दृश्य जगत हेतु दृग्गणित की उपयोगिता का ज्ञान उन्हें था।** निर्णय सिन्धु में इसपर स्पष्ट वचन है :

अदृष्टफलसिध्यर्थं यथार्कगणितं कुरु।
गणितं यदि दृष्टार्थं तदृष्ट्युद्भवतस्सदा ॥

"अदृष्ट फल की सिद्धि हेतु अर्कगणित (सूर्यसिद्धान्त) का प्रयोग करें..." । स्पष्ट है कि बाह्य चक्षु से दृष्ट भौतिक ग्रह–पिण्डों का ज्योतिष के अदृश्य ग्रहदेवबिम्बों से अन्तर माना जाता था। पाराशरी होराशास्त्र में उल्लेख है कि ज्योतिष के ग्रह प्राणियों को कर्मफल देने के लिये परमात्मा के अवतार हैं। बाह्य चक्षु द्वारा देवों का दर्शन सम्भव नहीं। अतः अभौतिक भुवलोकीय ग्रहों को भौतिक ग्रह समझना आर्ष परम्परा के विरुद्ध है।

भारतीय योगदान को आयातित बताने की कुचेष्टा

क्रान्ति का जो सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र ऊपर दर्शाया गया है,उसी का प्रयोग निर्मल चन्द्र लाहिड़ी जी करते थे (प्रमाण हेतु Advance Ephemeris, page 79 देखें)।पर सूर्यसिद्धान्त को आउट–ऑव –डेट कहने वाले इन महानुभावों को यह स्वीकार करने में भय लगता था कि सूर्यसिद्धान्तीय सूत्रों का आधुनिक विज्ञान में उपयोग करने से पहले सूर्यसिद्धान्त को इन सूत्रों के आविष्कार करने का श्रेय दिया जाना चाहिये।भय का कारण था पाश्चात्य "भारतविदों" की यह जिद कि भारतीयों का समस्त ज्ञान यूनान से चुराया हुआ है जिसके लिये प्राचीन भारतीयों ने यूनानियों को श्रेय भी नहीं दिया।१९वीं शती के तथाकथित भारतविदों से अधिक पूर्वाग्रही आज के कई विद्वान हैं जो उपरोक्त झूठे विचारों के प्रचार में लगे रहते हैं। ऐसे विचारों के लिये ब्राउन विश्वविद्यालय के डेविड पिन्ग्री प्रसिद्ध हैं। अमेरिका के फ्लोरिडा स्टेट विश्वविद्यालय के डेनिस ड्यूक लिखते हैं : "under the Pingree – van der Waerden Hypothesis, the Indian texts summarize centuries old traditions inherited from the Greeks. – (D. Pingree, "History of Mathematical astronomy in India", *Dictionary of Scientific Biography*, **15** (1978), 533-633; तथा D. Pingree, "Concentric with Equant", *Archives Internationales d'Histoire des Sciences,* **24** (1974) 26-28.)] लेकिन डेनिस ड्यूक ने साक्ष्यों की जाँच की तो पाया कि भारतीय खगोलीय मॉडल के स्रोत भारतीय हैं या अज्ञात ग्रीक–रोमन परम्परायें, इसके साक्ष्य उपलब्ध नहीं :"Without further information we cannot say whether the model was developed in India or in some earlier, and unknown to us, Greco-Roman tradition.(- *The Second Lunar Anomaly in Ancient Indian Astronomy*, Dennis W. Duke, Florida State University, USA.)। ब्रिटनी जैसे भारत विरोधी लेखकों के विरुद्ध सूर्य– सिद्धान्त के भाष्यकार बर्जेस ने यहाँ तक लिख दिया कि ग्रीस को भारतीय विद्याओं का स्रोत बतलाने वाले भूलते हैं कि खगोलविज्ञान में ग्रीस का योगदान बहुत बाद का है,और उसके अधिकांश मौलिक विचार भारत से उधार लिये हुये हैं : "I must think the Hindus original in regard to most of the elementary facts and principles of astronomy,... and that the Greeks borrowed from them." (परिशिष्ट, सूर्यसिद्धान्त

पर एवनेजर बर्जेस का भाष्य)।

जिन विचारों का प्राचीन पश्चिम में कोई प्रमाण नहीं,उनके लिये भी पिन्ग्री जैसे "विशेषज्ञो" का यही मानना है कि भारतीयों ने सब कुछ ग्रीस से चुराया। और जिन विचारों का प्राचीन पश्चिम से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव नहीं, उन्हें कपोर कल्पना कहा जाता है। ऐसी ही एक कपोर कल्पना है मेरु पर्वत की, जिसके विषय में वेदव्यास जी जैसे महर्षियों ने तथाकथित रूप से गप्पें हाँकी। महर्षियों की इन 'कपोर कल्पनाओं' का निष्पक्ष और विस्तृत गणितीय विश्लेषण करने का अवकाश किसी के पास नहीं।

सूर्यसिद्धान्तीय लग्नानयन सूत्र की गणितीय जाँच

सौर लग्नसूत्र में सूर्यक्रान्ति की आवश्यकता पड़ती है। चूँकि हमारा अभीष्ट ज्योतिष है, अतः दृग्गणित के विवाद में न पड़कर सूर्यसिद्धान्तीय लग्नानयनसूत्र की जाँच करते हैं। पहले विभिन्न क्रान्तिवृतीय राशियों के लङ्कोदयमानों की गणना की जाती है,और फिर उनमें इष्टस्थानीय चर-संस्कार करके विभिन्न क्रान्तिवृतीय राशियों के इष्ट स्थानीय उदयमान ज्ञात किये जाते हैं।क्रान्तिवृतीय राशियों के विषुवतीय उदयमानों को लङ्कोदयमान कहा जाता है, जिसकी गणितीय और ज्यामितीय व्याख्या प्रस्तुत लेख में है। सूर्यसिद्धान्त के तीसरे अध्याय 'त्रिप्रश्नाधिकार' में उदयमान ज्ञात करने का जो सूत्र दिया गया है उसे निम्नोक्त सरल तरीके से लिखा जा सकता है :

लङ्कोदयज्या = (भुजज्या ×परकोज्या)
÷[कोज्या (पर × भुजज्या)]

इस सूत्र में 'पर' से तात्पर्य है 'परम-सूर्यक्रान्ति' जिसका सौरपक्षीय मान है २४°।भुजज्या का अर्थ है भुज की ज्या, और भुज का अर्थ है मेषारम्भ से विभिन्न राशियों का कोणीय मान, जिसे चिह्न सहित ९०° अंश के भीतर परिवर्तित किया जाय तो भुज कहते हैं। प्राचीन विधि में भुज की आवश्यकता पड़ती थी, किन्तु साइण्टिफिक कैलकुलेटर का प्रयोग करने पर भुज बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, ३६०° अंश तक किसी भी कोण को सीधे सूत्र में डालकर फल ज्ञात कर सकते हैं, जिसे भुजज्या के बदले राशिज्या लिखा जा सकता है। इसे निम्नोक्त सूत्र में 'A' दर्शाया गया है (सूत्र की उपपत्ति लेख के अन्त में है):

लङ्कोदय = १० × निम्नोक्त सूत्र के फल का चाप *[भुजज्या × कोज्या (२४)] ÷ [कोज्या (२४ × भुजज्या)]* *अथवा*

[(sin A ×cos 24) ÷cos(24 ×sin A)]

इस सूत्र में 'A' का मान ३०° रखें तो फल २७८·३८२६४९६ पल मिलता है। यह प्रथम राशि का पलात्मक लङ्कोदयमान है।पुनः सूत्र में 'A' ६०° रखें और प्राप्त फल ५७८·०३४२६०४ पल में से प्रथम राशि के उपरोक्त उदयमान को न्यून करें तो द्वितीय राशि का लङ्कोदयमान २९९·६५१६१०८ पल मिलेगा। पुनः सूत्र में 'A' का मान ९०° रखें और प्राप्त फल ९०० पल में से प्रथम तथा द्वितीय राशियों के सम्मिलित उदयमानों (=५७८·०३४२६०४ पल) को न्यून करें तो तृतीय राशि का लङ्कोदयमान ३२१·९६५७३९६ पल मिलेगा। इन तीनों राशियों के शुद्ध पलात्मक मान निम्नोक्त हैं :

राशि–१ = **२७८**·३८२६४९६११२६१६६४५३९१
राशि–२ = **२९९**·६५१६१०८००९९६७२६२३२८
राशि–३ = **३२१**·९६५७३९५८७७४१६०९२२८१

स्थूल गणितज्ञों ने दशमलव पर ध्यान नहीं दिया और पहली दों राशियों का लङ्कोदयमान क्रमशः २७८ तथा २९९ लिया, जिन्हें ९०० में न्यून करने पर तीसरी राशि का लङ्कोदयमान उन्हें ३२३ पल मिला। दीर्घकाल से इन्हीं स्थूल लङ्कोदयमानों का प्रयोग हो रहा है। जिन ज्योतिषियों की षष्टयंश जैसे उच्च वर्गों में रुचि नहीं, उनके लिये इतनी त्रुटि नगण्य है।

किन्तु यदि उपरोक्त गणित में रत्ती भर भी त्रुटि न की जाय तो कुछ अद्भुत निष्कर्ष मिलेंगे, जिनपर ध्यान नहीं दिया जाता।उक्त तीनों राशियों का सम्मिलित लङ्कोदयमान अहोरात्र का चतुर्थांश या ९०० पल है। पहली राशि ३०० पल से अत्यधिक न्यून है,तीसरी राशि ३०० पल से अत्यधिक अधिक है। मध्य राशि का मान ३०० पल होना चाहिये, पर शुद्ध गणना करने पर '–०·३४८३८९२' पल का अल्प अन्तर प्राप्त होता है। सूर्यसिद्धान्त को गम्भीरता से नहीं लेने वाले तथाकथित 'विशेषज्ञों' का ध्यान ऐसे अल्पान्तरों की ओर नहीं जाता, वे सूर्यसिद्धान्तीय सूत्रों को अशुद्ध मानकर जाँच ही नहीं करते।

यदि सूर्यसिद्धान्त भूकेन्द्रिक होता तो मध्य राशि का लङ्कोदय मान ठीक–ठीक ३०० पल होता। किन्तु वास्तव में ३०० पलों से –०·३४८३८९१९९ पल

का अल्पान्तर है जो मध्यराशि के मध्यम लङ्कोदय मान ३०० पल का ८६१·१०५९१५०४६४ वाँ भाग है। यह भूकेन्द्र से रविकक्षाकेन्द्र के अन्तर का द्योतक है, जिसका योजनात्मक मान निम्नोक्त विधि द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार रविकक्षा का मान ४३,३१,५०० योजन है। यद्यपि रविकक्षा अत्यन्त जटिल दीर्घवृतीय अभिचक्रिका (elliptical epicycloid) है,इसे लगभग दीर्घवृतीय मान लें तो परिधि एवं व्यासार्ध के अनुपात (=२π= २ × ३·१४१५९२६५) से विभक्त करने पर सैद्धान्तिक सूर्य से कक्षाकेन्द्र की औसत दूरी प्राप्त कर सकते हैं।यह दूरी मुख्यव्यासार्ध एवं गौण व्यासार्ध का औसत है।सूर्यसिद्धान्तीय परममन्दफलार्ध (२°:१०′: ३२″ का आधा) की ज्या रविकक्षा की उत्केन्द्रता का मान देती है (०·०१८९८४१६३) जो कक्षा के ज्यामितीय केन्द्र से मुख्यनाभि मेरु की दूरी का मुख्य व्यासार्ध से अनुपात है, तथा परममन्दफलार्ध की कोज्या रविकक्षा के गौण व्यासार्ध एवं मुख्य व्यासार्ध का परस्पर अनुपात है। गौणव्यासार्ध (=०·९९९८१९७८४५) एवं मुख्यव्यासार्ध (= १) के परस्पर अन्तर के आधे (= ०·०००००९०१०७७३३३) को मुख्यव्यासार्ध तथा गौणव्यासार्ध के औसत (= १·९९९८१९७८४५ ÷ २ = ४३३१५०० योजन ÷ २π) में जोड़े तो सूर्यसिद्धान्तीय रविकक्षा के मुख्यव्यासार्ध का योजनात्मक मान ज्ञात किया जा सकता है। गणना इस प्रकार है : ***रविकक्षा औसत व्यासार्ध = ४३३१५०० ÷ २π = ६८९३७९·६३६ योजन*** । इसे मुख्यव्यासार्ध (=१) तथा औसत व्यासार्ध (= १·९९९८१९७८४५ ÷ २) के परस्पर अनुपात से गुणित करें तो दीर्घवृतीय सूर्यसिद्धान्तीय रविकक्षा के मुख्यव्यास का योजनात्मक मान ***६८९४४१·७६००३६६ योजन*** प्राप्त होता है। इसे ८६१·१०५९१५ से विभक्त करने पर **भूकेन्द्र से रविकक्षाकेन्द्र की दूरी** का स्थूल मान निःसृत होता है :

६८९४४१·७६००३६६ ÷ ८६१·१०५९१५०४६४

= ८००·६४६८७५१२ योजन

यह **भूकेन्द्र से रविकक्षाकेन्द्र की दूरी** है। सूर्यसिद्धान्तानुसार विषुवतीय भूव्यासार्ध ८०० योजन है, जो आधुनिक मान में ६३७८·१९७ किलोमीटर है,अतः ०·६४६८७५ योजन का मान ५१५७·३७ मीटर होना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि **भूकेन्द्र से रविकक्षाकेन्द्र की दूरी *विषुवतीय भूव्यासार्ध से ५१५७ मीटर अधिक*** होना चाहिये, अर्थात् विषुवत पर भूतल से ५१५७ मीटर ऊँचा कोई पर्वत शिखर रविकक्षा का केन्द्र होना चाहिये, क्योंकि लङ्कोदय विषुवत पर राश्योदय होता है। विषुवत पर लगभग इतने ही ऊँचे दो शिखर हैं,एक अफ्रीका के केन्या देश में तथा दूसरा दक्षिण अमेरिका में। चूँकि सैद्धान्तिक रविकक्षा 'दीर्घवृतीय अभिचक्रिकाकार' है, न कि शुद्ध दीर्घवृत्ताकार जैसा मानकर उपरोक्त स्थूल गणना की गई है, अतः −४१·६३ मीटर की त्रुटि मिली है। अफ्रीका के केन्या देश में ५१९९ मीटर ऊँचा पर्वत है जिसकी तलहटी में वहाँ की स्थानीय आदिवासी भाषा में मेरु नाम का नगर, मेरु नाम की जाति और मेरु नाम की भाषा आज भी विद्यमान है। इस जाति का हाल में ईसाई धर्म में धर्मान्तरण कराया गया है, जिसके पश्चात अब उन्हें पादरियों द्वारा शिक्षा दी जा रही है कि मेरु जाति इस्राइल से केन्या गई थी, यद्यपि वैज्ञानिक साक्ष्य बतलाते हैं कि केन्द्रीय अफ्रीका के उसी पूर्वी भाग में ही लगभग ४० लाख वर्ष पहले मानव जाति का प्रादुर्भाव हुआ था। किन्तु इसी वैज्ञानिक तथ्य का जब पुराणों एवं ज्योतिष−सिद्धान्त के ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि आज से ३८९३,१११ सौर वर्ष पहले प्रलय के पश्चात वर्तमान महायुग आरम्भ हुआ था और ब्रह्मा जी बारम्बार मेरु पर्वत से ही सर्जना करते हैं तो पुराणों और सिद्धान्तों को मिथ्या कहा जाता है।

लङ्कोदयसाधन के उपरोक्त सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र में परमक्रान्ति का मान शून्य रखने पर ही मध्यराशि का लङ्कोदयमान ३०० पल हो सकता है, किन्तु परमक्रान्ति का मान शून्य सम्भव नहीं है। उपरोक्त सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र को अशुद्ध कहने वाले इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते कि इस सूत्र द्वारा भूकेन्द्र के बदले विषुवतीय मेरु पर कक्षाकेन्द्र की सिद्धि होती है जिसका पौराणिक एवं सैद्धान्तिक ग्रन्थों में दिये गये विवरणों से तादात्म्य है, जिसे संयोग कहकर टालना अनुचित है क्योंकि मेरु पर्वत की ऊँचाई के पाँच पृथक सैद्धान्तिक सूत्र इस लेखक को ज्ञात हैं जिनमें से दो प्रस्तुत लेख में दिये गये हैं।

मेरु की भौगोलिक स्थिति : साहित्यिक प्रमाण

देवर्षि नारद ने ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान

सीधे ब्रह्मा जी से प्राप्त किया। नारद पुराण में वे मेरु पर्वत के बारे में लिखते हैं (पूर्वभाग, अध्याय ३, श्लोक ४१) **"भूतले मध्यगो मेरुः सर्वदेवसमाश्रयः"** । अर्थात् मेरु "भूतल" के मध्य में है। श्रीमद् भागवत पुराण एवं अन्य पुराणों में भी ऐसा ही वर्णन है। नरपतिजयचर्या के लेखक ने लिखा कि भूमध्य में मेरु के स्थित होने की बात वे सुनते तो हैं किन्तु भूमध्य में उन्हें मेरु दिखा नहीं ("**दृश्यते न तु**")। नरपतिजयचर्या के भौगोलिक वर्णन से स्पष्ट है कि भारत से बाहर का ज्ञान नरपति कवि को नहीं था, अतः उन्हें मेरु नहीं मिला। किन्तु मेरु के भूमध्य में होने की बात वे स्वीकारते हैं। सूर्यसिद्धान्त में निम्नोक्त श्लोक है :

अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः॥३४॥

पं॰ रामचन्द्र पाण्डेय ने इसकी सही व्याख्या दी : "अनेक रत्नों के समूह से परिपूर्ण जाम्बूनद (स्वर्णनदी) से युक्त भूगोल के मध्य में गया हुआ तथा पृथ्वी के दोनों भाग (उत्तर–दक्षिण) में निकला हुआ मेरु पर्वत है"। बर्जेस ने भी ऐसा ही अर्थ दिया। मुख्य मेरु पर्वत भूगोलमध्यरेखा पर स्थित जम्बूद्वीप के जाम्बूनद प्रदेश में है, जो भूकेन्द्र होते हुये उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों की ओर भी निकला हुआ है (सुमेरु तथा कुमेरु)। आज भी माउण्ट केन्या के प्रदेश में जाम्बूनदी (जाम्बेजी) नदी है, जम्बूद्वीप के उस केन्द्रीय प्रदेश में जाम्बिया, मु–जाम्बिक ('मु' अरबी उपसर्ग है), जिम्बाबवे, जाम्बो से कांगो और जाम्बून से गैबोन आदि देश उस प्रदेश में मिलते हैं। मेरु नाम के अनेक पर्वतादि तन्जानिया, केन्या, ईथीयोपिया और सूडान में हैं, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है विषुवत पर स्थित केन्या पर्वत की तलहटी में स्थित मेरु नगर, जो सिद्ध करता है कि केन्या पर्वत ही प्राचीन मेरु है, और दूसरा महत्वपूर्ण स्थल है प्रागैतिहासिक काँस्ययुगीन मेरु नगर जो दक्षिण सूडान में स्थित एक ऐसी विकसित अफ्रीकी सभ्यता की राजधानी था जिसकी लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है (एक पाश्चात्य भाषाविद ने इसे पढ़ने का दावा किया है, उनकी मान्यता है कि मिश्री सभ्यता के उद्गम स्थल अफ्रीका के प्राचीन कुष प्रदेश की यह राजधानी उन आर्य लोगों से सम्बद्ध थी जिनकी पूर्वी शाखा कुषाण नाम से विख्यात है, जिसके प्रसिद्ध सम्राट कनि**श्क** से शक सम्वत् का सम्बन्ध अधिकांश इतिहासकार जोड़ते हैं)।

वाल्मीकि रामायण में वर्णन है कि सूर्य जम्बूद्वीप स्थित मेरु पर्वत की परिक्रमा करते हैं। अग्निपुराण के शब्द हैं : "**जम्बूद्वीपमध्ये मेरुः**"। कूर्मपुराण का भी यही कथन है। भागवतपुराण के शब्द हैं (स्कन्ध ५ के अध्याय २० में श्लोक ३०): "**लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात् सूर्यरथस्य मेरुं परिध्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानाम्–अहोरात्राभ्यां परिध्रमति**"।

ब्रह्माण्डपुराण (वायुप्रोक्त पूर्वभाग, द्वितीय अनुषङ्ग, २१वाँ अध्याय) में सभी लोकपालों के मध्य में मेरु की स्थिति कही गई है और मेरु के चतुर्दिक सूर्य को भ्रमण करते हुये बतलाया गया है और उपरोक्त अनुषङ्ग के १५वें अध्याय में इलावृत के मध्य में मेरु की स्थिति कही गई है। महाभारत में भी ऐसा ही वर्णन है। ब्रह्माण्डपुराण (और भागवत पुराण) में मेरु का मान ३२००० योजन बताया गया है; पृथ्वी का मान एवं विभिन्न द्वीपों के मान भी सूर्यसिद्धान्तीय भू–योजन से मेल नहीं खाते। सूर्य–सिद्धान्तीय लग्नसूत्रानुसार मेरु की ऊँचाई प्रायः केन्या पर्वत के तुल्य ही है :५१९९ मीटर। इसका ३२००० वाँ भाग १६.२५ सेण्टीमीटर या ६.४ इञ्च है, जो हथेली की लम्बाई के तुल्य है। विभिन्न ग्रन्थों में योजन के भिन्न–भिन्न मान दिये गये हैं, अतः इस मामले में सावधानी बरतनी चाहिये।

मेरु नाम के कई स्थल अन्य देशों में भी हैं। क्यों न हो, सृष्टिकेन्द्र से ही सभी मानव उत्पन्न होकर होकर विश्व में फैले, भले ही कलिकाल में यह स्मृति नष्ट हो गई। व्यास जी ने लिख दिया था कि कलियुग में लोग इतिहास भूल जायेंगे। विषुवत् से अन्यत्र मेरु की स्थिति नहीं मानी जा सकती, क्योंकि पौराणिक और सैद्धान्तिक प्रमाण ऐसा ही बतलाते हैं। उत्तर और दक्षिण ध्रुवों को क्रमशः सुमेरु और कुमेरु सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है। सुमेरु को कई बार मेरु लिख दिया जाता था, जिस कारण उत्तर ध्रुव को मेरु पर्वत समझने की भूल कई लोग करते हैं। किन्तु उत्तर ध्रुव पर समुद्र है, पर्वत नहीं। अफ्रीका में स्थित विषुवतीय मेरु पर्वत को ज्योतिषीय उत्तर ध्रुव मानकर उसी प्रकार से अक्षांश–रेखांश बनायें जाय जैसे कि भौगोलिक ध्रुवों से बनाते हैं और ऐसे मानचित्र पर संसार की

कुण्डली नक्षत्रप्रवेश कालों में बनाई जाय तो पूरे संसार का सही फलादेश प्राप्त होता है। नरपति–जयचर्या ने ऐसे चक्र को पद्मचक्र की संज्ञा दी, जो कूर्मचक्र का सबसे बड़ा स्वरूप है और इसे ही मेरुकेन्द्रित **पृथ्वीचक्र** भी कहा जाना चाहिये।

मेरु रविकक्षाकेन्द्र ही नहीं, सृष्टिकेन्द्र भी है

अभीतक प्रस्तुत लेख में रविकक्षा–केन्द्र के रूप में मेरु के गणितीय एवं पौराणिक साक्ष्यों की चर्चा की गई है।पुराणों में मेरु को सम्पूर्ण सृष्टि और समस्त लोकों का केन्द्र माना गया है, जिसके शिखर पर बैठकर ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना करते हैं। ब्रह्माण्डपुराण के उपरोक्त अनुषङ्ग में ही देवग्रहानुकीर्तन नामक २२वें अध्याय में महर्षि वेदव्यास जी का निम्नोक्त वचन है :

उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥६॥
स हि भ्रमन् भ्रामयते नित्यं चन्द्रादित्ये ग्रहैः सह।

अर्थात् उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव मेढीभूत होकर आकाश में स्वयं भी घूमता है और सूर्य–चन्द्रमा सहित समस्त ग्रहों को भी घुमाता है। ध्रुवचर्याकीर्तन नामक अगले अध्याय के अन्त में इसका विस्तार अनेक श्लोकों में करते हुये कहा गया है कि ग्रहों को घुमाने वाले और स्वयं घूमने वाले **ध्रुव भी मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं।** अतः मेरु सृष्टि का एकमात्र स्थिर बिन्दु एवं केन्द्र है।

सूर्यसिद्धान्त के एक आधुनिक टीकाकार ने ब्रह्माण्डपुराण के उपरोक्त श्लोक का सही शब्दार्थ दिया है किन्तु आधुनिक मत जोड़ दिया है :"यहाँ यह भी सिद्ध होता है कि पृथ्वी भी अपनी कक्षा में अन्य ग्रहों की भाँति भ्रमण करती है। यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है सभी भ्रमण कर रहे हैं" । ऐसा वचन किसी भी आर्ष ग्रन्थ में नहीं मिलेगा। सूर्य–सिद्धान्त में पृथिवी को केन्द्र में रखकर समस्त खगोलीय पिण्डों की कक्षाओं का वर्णन है। अथर्व–वेद के काण्ड–६ में दो सूक्तों(४४ तथा ७७, ऋषि क्रमशः विश्वामित्र और कबन्ध)में निम्न मन्त्र है :

अस्थाद्द्यौरस्थात्पृथिव्यस्थाद्विश्वमिदं जगत्।

अर्थात्("अस्थात् द्यौः अस्थात् पृथिवी अस्थात् विश्वम इदं जगत्") 'द्यौ, पृथिवी तथा यह समस्त जगत स्थिर है' ।ईशोपनिषद के प्रथम मन्त्र में जगत को गतिशील कहा गया है, जो व्युत्पत्ति के अनुसार ठीक ही है। किन्तु अथर्ववेद में स्थिर द्यावापृथिवी में स्थित होने के कारण जगत को भी स्थिर कहा गया है,जिसका तात्पर्य जगत की सारी गतियाँ स्थिर द्यावापृथिवी के भीतर ही हैं, स्थिर द्यावापृथिवी के बाहर जगत नहीं जा सकता। सभी वेदों में द्यौ और पृथिवी को एक युग्म के रूप में (द्यावापृथिवी, रोदसी) बारम्बार दर्शाया गया है। द्यौ में गतिशील सूर्यादि ग्रहों की भाँति पृथिवी भी एक ग्रह है, यह आधुनिक मान्यता वेदविरुद्ध है। मेरु भूतल पर स्थित है अतः पृथिवी का वह भाग तो स्थिर है ही जहाँ मेरु है। ***'ग्रह' शब्द की आधुनिक परिभाषा भौतिकवादी और कृत्रिम है : सूर्य अथवा सूर्यतुल्य बड़े पिण्डों के चतुर्दिक नियमित गति से भ्रमण करने वाले छोटे पिण्डों को आजकल ग्रह माना जाता है।*** सामान्य ग्रहों की नियमित गति से अन्तर रखने के कारण हाल में प्लूतो को वैज्ञानिकों ने ग्रह की जाति से बहिष्कृत किया गया है। किन्तु वैदिक–पौराणिक परम्परा में ग्रह की ऐसी भौतिकवादी परिभाषा अमान्य है।सूर्य–सिद्धान्तानुसार **६० वर्ष की भकक्षा (नक्षत्रों की कक्षा) से बाहर के पिण्ड ग्रह नहीं हैं।** शनि की कक्षा २९.४७ वर्ष की है, किन्तु यूरेनस की कक्षा ८४ वर्ष की है, अतः शनि ग्रह है और यूरेनस ग्रह नहीं है। इसका कारण यह है कि **भकक्षा से बाहर के पिण्ड ग्रहों की भाँति फलित ज्योतिष को प्रभावित करने वाले सामान्य गुण नहीं रखते अतः नवग्रहों की श्रेणी से बाहर रखे गये हैं।**

सम्पात–पुरस्सरण का पुराण में वर्णन

ऊपर ब्रह्माण्डपुराण का जो श्लोक उद्धृत किया गया है, वह आधुनिक भौतिकविज्ञान के सम्पात–पुरस्सरण (precession of equinoxes) **की अवधारणा का पुराण में वर्णन** होने का प्रमाण है। सूर्यसिद्धानुसार २४००० तथा भौतिक विज्ञान के अनुसार २५७७१.४ वर्षों में ध्रुव एक भगण (३६०°) घूमता है, इसी तथ्य का व्यास जी ने ब्रह्माण्डपुराण में उल्लेख किया।सिद्धान्तशिरोमणि में "आगम" द्वारा प्राप्त सूर्यसिद्धानुसार के "अनुपलब्ध" सूत्र द्वारा भास्कराचार्य ने जो गणना की वह २५४६१.३४ वर्षों का सम्पात–पुरस्सरण चक्र दिखाता है, जिसके आधार पर भास्कराचार्य ने दृक्पक्षीय क्रान्त्यादि साधन का आदेश दिया। इसमें महायुगीन और मन्वन्तरीय शोध्य करने पर आधुनिक वेधमान २५७७१.४ वर्ष के अयनांशचक्र की निष्पत्ति होती है, जिसकी चर्चा

सिद्धान्तशिरोमणि में नहीं है (इस विषय पर प्रस्तुत लेखक द्वारा एक पृथक लेख है : **Ayanamsha versus Precession**, website www.jyotirvidya.wetpaint.com)।
सिद्धान्तशिरोमणि में जो है, वह भी लिखित साक्ष्यों के आधार पर प्राचीन काल में सम्पात–पुरस्सरण चक्र का सर्वाधिक शुद्ध मान है। किन्तु एक भी भारतीय वा पाश्चात्य लेखक इसकी चर्चा नहीं करता; सभी लेखक न्यूटन से पहले क्रान्तिवृत तथा नाडी वृतों के परस्पर सम्पात बिन्दु के पुरस्सरण–चक्र पर केवल हिप्पार्कस को उद्धृत करते हैं जिसका सम्पातचक्र ३६००० वर्षों का होने के कारण अत्यन्त अशुद्ध था।यहाँ इस प्रसङ्ग की चर्चा केवल यह दर्शाने के लिये की गई है कि पौराणिक काल में भी ध्रुव के घूर्णन का ज्ञान ऋषियों को था। आधुनिक विकासवादियों को यह सिद्ध करने में मजा आता है कि उनके पूर्वज ज्ञान के क्षेत्र में अविकसित और असभ्य थे, अतः प्राचीन ग्रन्थों में जो ज्ञान है उसपर उनकी दृष्टि नहीं जाती।सूर्यसिद्धान्त का लग्नसूत्र दीर्घकाल से ज्योतिषियों द्वारा लङ्कोदयमान ज्ञात करने के लिये प्रयुक्त हो रहा है, किन्तु इस सूत्र में सृष्टि के मेरुकेन्द्रित होने का रहस्य और गणितीय प्रमाण छुपा है इसपर कोई ध्यान नहीं देता, क्योंकि सूक्ष्म गणना की सैद्धान्तिक परिपाटी ज्योतिषियों ने दीर्घकाल से त्याग रखी है और आधुनिक गणितज्ञों की सूर्यसिद्धान्त के विषय में पूर्वाग्रह उन्हें सूर्यसिद्धान्तीय सूक्ष्मगणित समझने नहीं देता।

मेरु की ऊँचाई का दूसरा सौरसूत्र

तीन प्रारम्भिक राशियों के जो लङ्कोदयमान सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र द्वारा ऊपर निःसृत किये गये हैं,अब उनकी जाँच एक अन्य विधि द्वारा करें। **लङ्कोदयमान का सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र भूकेन्द्रिक न होकर मेरुकेन्द्रिक है**,क्योंकि मध्यराशि का लङ्कोदय मान भूकेन्द्र से विषुवतीय भूव्यासार्ध और लगभग ५१५७ मीटर दूर पर केन्द्र की स्थिति दर्शाता है।पर मेरु पर्वत (माउण्ट केन्या) की वास्तविक ऊँचाई ५१९९ मीटर है,जिसका सूर्यसिद्धान्तीय मान ०.६५२०९६५१ योजन है। अतः भूकेन्द्र से मेरु शिखर की दूरी ८००.६५२०९६५१ योजन है। रविकक्षा के मुख्य व्यासार्ध का यह ८६१.१००२९९४२०७३४७३ वाँ भाग है, जिसे ३०० पल के औसत मान में भाग देने पर जो अल्पान्तर मिलता है उसे ३०० पल में न्यून करें तो २९९.६५१६०८५२८९९२७२ पल मिलेगा। विषुवत अथवा लङ्का पर यह क्रान्तिवृत के किस भाग का उदयमान है, अब यह प्रश्न उठता है। पूरी राशि का लङ्कोदयमान सही आकलन करने में सहायता नहीं करता, क्योंकि राशि के आरम्भिक और अन्तिम भागों के उदयमानों में बहुत अन्तर रहता है। अतः ३०° की राशि के स्थान पर ०.००१° का लङ्कोदयमान ज्ञात करके ३०००० से गुणित करें तो क्रान्तिवृत के विशेष बिन्दु पर लङ्कोदय का शुद्ध मान ज्ञात हो सकता है। ३०००० से गुणित करने का कारण है राशि के उदयमान से तुल्यता में सुविधा। मध्यराशि के मध्य में, अर्थात् ४५° के आसपास अभीष्ट मान होना चाहिये, किन्तु उससे कुछ अधिक बढ़ने पर २९९.६५१६०८५२८९९२७२ ÷ ३०००० पल का लङ्कोदयमान प्राप्त होता है। कम्प्यूटर प्रोग्राम की सहायता से गणना करने पर ४५.०७८७२१° वह बिन्दु मिलता है जहाँ का लङ्कोदय मान मेरु पर्वत की वास्तविक ऊँचाई पर आधारित २९९.६५१६०८५२८९९२७÷३०००० पल ०.००१° के खण्ड हेतु है।मध्यमान ४५° से ०.०७८७२१°के अतिरिक्त मान का क्या अर्थ है? किसी वृत को झुका दिया जाय तो दीर्घवृत बनता है,जिसके मुख्य तथा गौण व्यासों का अनुपात झुकाव के कोण की कोज्या होती है।०.०७८७२१° की कोज्या रविकक्षा में इस झुकाव के कारण बने दीर्घवृत के मुख्य तथा गौण व्यासों का अनुपात देती है,जिनके परस्पर अनुपात को रविकक्षाव्यासार्ध से गुणित करने पर मुख्य तथा गौण व्यासों का अन्तर ५.१८८ किलोमीटर मिलता है, जो मेरु पर्वत की ऊँचाई से केवल ११ मीटर न्यून है(यह त्रुटि १६ अङ्कों तक गणना की सीमा के कारण है)। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण राशि के स्थान पर छोटे खण्डों की जाँच करने पर सूर्यसिद्धान्तीय लङ्कोदयसूत्र द्वारा मेरु पर्वत की वास्तविक ऊँचाई मिल जाती है। इस प्रोग्राम का विजुअल बेसिक VB6 कोड नीचे दिया जा रहा है। एक फॉर्म बनाकर उसपर कमाण्ड बटन रखें, जिसके कोड में निम्नोक्त भर दें :

```
DefDbl D
Private Sub Command1_Click()
  dBhuj = 45.078
  Q = CDec("57.295779513082320876798154814105")
  dM = 0.001
Repeat:
dLankod = Sin(dBhuj / Q) * Cos(24# / Q) / Cos((24# * Sin(dBhuj /
```

```
Q)) / Q)
dLankoday =10#*Q*Atn(dLankod / Sqr(-dLankod * dLankod + 1#))
dLankod2  =  Sin((dBhuj + dM)/Q) * Cos(24#/Q) / Cos((24# *
             Sin((dBhuj + dM)/Q)) / Q)
dLankoday2 = 10#*Q*Atn(dLankod2/
             Sqr (-dLankod2*dLankod2+1#))
Diff = (dLankoday2 - dLankoday) * 30# / dM
Difference=CDec("299.651608528992718874236551161 63")- Diff
   If Difference < 0.0000000001 Then GoTo Skip
   dBhuj = dBhuj + 0.000000001
   dK = dK + 1
   GoTo Repeat
Skip:
   dHtMeru = 5496744.207 * (1# - Cos((dBhuj - 45#) / Q))
   Debug.Print Diff; dBhuj; dHtMeru; dK; Difference; dM
End Sub
```

उक्त कोड में यदि dM का मान ०.००१° से अधिक करें तो फल में स्थूलताजनित दोष आ जायगा, और यदि न्यून करें तो १६ अङ्कों की गणन–क्षमता से अधिक सक्षम कम्प्यूटर प्रोग्राम की आवश्यकता पड़ेगी; फल की शुद्धता कितनी है इसकी जाँच इस प्रोग्राम में "Difference" से की जा सकती है। इस प्रोग्राम में २२०७४१ बार (= dK) गणना करने पर सही फल की प्राप्ति हुई।यह गणित बिना कम्प्यूटर के प्राचीनकाल में मानव हेतु सम्भव नहीं था। मेरुकेन्द्रित गणित पर आधारित पौराणिक–सैद्धान्तिक गणित जिन्होंने निर्मित किया, वे निस्सन्देह ही साधारण मानव नहीं हो सकते।

रविकक्षाव्यासार्ध का सूर्यसिद्धान्तीय मान लेने पर ही सूत्र सही कार्य करता है, जो दृक्पक्षीय रविकक्षाव्यासार्ध से २७.२ गुणा न्यून है। इसका कारण यह है कि सूर्यसिद्धान्तीय रविकक्षा और दृक्पक्षीय रविकक्षा परस्पर भिन्न हैं, जिसका प्रमाण है सूर्यसिद्धान्तीय गणित का पालन करने पर ज्योतिषीय फलादेश की सत्यता। दृक्पक्षीय सूर्य भूलोक के भौतिक पिण्ड हैं, तथा सूर्यसिद्धान्तीय सूर्य भुवलोक के दिव्य बिम्ब हैं जो ज्योतिष का फल देते हैं। वास्तविक सूर्यदेव तो स्वलोक में हैं। सौरपुराण में सूर्य को त्रिमार्गी कहा गया है : तीन लोकों में तीन मार्गों पर चलने वाले तीन सूर्य, जो एक ही सूर्यदेव के विभिन्न रूप हैं।

निष्कर्ष यह है कि सूर्यसिद्धान्तीय लङ्कोदय सूत्र मेरुकेन्द्रिक है।मेरुपर्वत की ऊँचाई और विषुवतीय भूव्यासार्ध को हटाने पर सूत्र अशुद्ध हो जाता है।सहस्त्रों वर्षों से पूरे विश्व ने इस अद्भुत मेरुकेन्द्रिक सूत्र का प्रयोग लग्नानयन में किया और आज भी कर रहे हैं, किन्तु इस सूत्र में छुपे मेरु के गूढ़ गणित के रहस्य पर किसी का ध्यान नहीं गया।सूर्यसिद्धान्त का अन्तिम श्लोक है :

सः तेभ्यः प्रददौ प्रीतो ग्रहाणाम् चरितम् महत्।
अत्यद्भुततम् लोके रहस्यम् ब्रह्मसम्मितम्॥२७॥

ऋषियों ने जिस ग्रहचरितशास्त्र को **लोक में अद्भुत ब्रह्मज्ञानरूपी रहस्य** माना, उसे गोमांस–भक्षकों द्वारा दूरबीन आदि के माध्यम से प्राप्त करना सम्भव नहीं। मेरुगणित दुरुह, दिव्य और अनन्त है, जिसके कुछ गणितीय प्रमेयों का वर्णन २००५ ईस्वी में प्रकाशित ग्रन्थ '**सूर्यसिद्धान्त : दृक्पक्ष तथा सौरपक्ष की गणितीय विवेचना**' नामक ग्रन्थ में किया गया था, जिसमें मेरु की ऊँचाई का तीसरा सर्वाधिक शुद्ध सूत्र प्रकाशित किया गया था जो गुरुत्वाकर्षण के आगम सूत्र से सम्बद्ध है, किन्तु विस्तारभय के कारण यहाँ नहीं दिया जा रहा है। मन्दफल एवं शीघ्रफल के सूत्रों की सूक्ष्म गवेषणा से भी मेरु की ऊँचाई निकलती है, किन्तु उपपत्ति संक्षिप्त लेख में सम्भव नहीं है। यह सब विस्तार से वर्णन आगामी लेखों में एवं सूर्यसिद्धान्त पर लिखे जा रहे भाष्य में दिये जायेंगे।

लङ्कोदयमान की गणितीय व्याख्या

ऊपर लङ्कोदयमान की व्याख्या दी गई है : '**क्रान्तिवृतीय** राशियों के विषुवतीय उदयमानों को लङ्कोदयमान कहा जाता है' ।

लङ्कोदयज्या = (एकराशिज्या अथवा द्विराशिज्या अथवा त्रिराशिज्या) × त्रिराशिद्युज्या ÷ स्वक्रान्तिज्यासम्बन्धिद्युज्या

प्रथम पद (एकराशिज्या अथवा द्विराशिज्या अथवा त्रिराशिज्या) का अर्थ है ३०° अथवा ६०° अथवा ९०° की ज्या (sine), जिसे लङ्कोदयसूत्र में '**भुजज्या**' लिखा गया है। द्वितीय पद का अर्थ है परमक्रान्ति की द्युज्या (क्रान्ति आकाशीय वा द्य लोकीय कोण है, अतः द्यु की कोज्या होने के कारण इसका नाम द्युज्या पड़ा) जो परमक्रान्ति की कोज्या (cosine of maximum declination of Sun) अर्थात् २४° की कोज्या (Cos 24°) है, इसे लङ्कोदयसूत्र में '**परकोज्या**' लिखा गया है। परमक्रान्तिद्युज्या को त्रिराशिद्युज्या कहने का कारण यह है कि सूर्यक्रान्ति साधन के सूत्रानुसार 'इष्टक्रान्ति = सायनसूर्यांशज्या × परमक्रान्तिज्या' होती है, जिसमें सायनसूर्यांश ९०° रहने पर इष्टक्रान्ति का मान परमक्रान्ति के तुल्य होता है।

पं. रङ्गनाथ के तृतीय पद 'स्वक्रान्तिज्या –सम्बन्धिद्युज्या' का अर्थ है परमक्रान्ति के बदले

'परमक्रान्ति × भुजज्या' की कोज्या या द्युज्या। इसे लङ्कोदयसूत्र में '**कोज्या (पर × भुजज्या)**' लिखा गया है। अतः पूरे सूत्र को इस प्रकार लिखें :

लङ्कोदयज्या= *(भुजज्या ×परकोज्या) ÷ [कोज्या (पर × भुजज्या)]* = **(भुजज्या × कोज्या २४°) ÷ [कोज्या (२४° × भुजज्या)]**

भुज का मान ३०° रखने पर प्रथम राशि मेष का लङ्कोदयमान प्राप्त होगा। भुज का मान ६०° प्रथम एवं द्वितीय राशियों का सम्मिलित लङ्कोदय मान देगा, जिसमें से मेष का उदयमान न्यून करने पर वृष का लङ्कोदयमान प्राप्त होगा। भुज का मान ९०° हो तो प्राप्त फल ९०° अथवा ९०० पल होगा, जिसमें से मेष तथा वृष के लङ्कोदयमानों को न्यून करने पर मिथुन का लङ्कोदयमान मिलेगा। वृत के अन्य तीन पादों के लङ्कोदयमान प्रथम पाद के तुल्य ही होंगे। राशियों के परम्परागत पलात्मक स्थूल मानों के अनुसार निम्नोक्त चित्र बारह राशियों के लङ्कोदयमान स्पष्ट करता है :

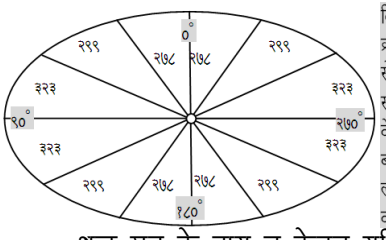

विषुवतवृत पर क्रान्तिवृत के प्रक्षेप से बने सभी समान बारह भागों के उदयमान उन बारह राशियों के लङ्कोदयमान कहलाते हैं।

शुद्ध सूत्र के द्वारा न केवल राशियों के शुद्ध लङ्कोदयमान प्राप्त होते हैं, बल्कि चरसाधन करके इष्टस्थानीय शुद्ध उदयमान भी मिलते हैं। इतना ही नहीं, लग्नानयन की प्रक्रिया में आरम्भिक एवं अन्तिम अशुद्ध (अर्थात् अपूर्ण) राशिखण्डों के खण्ड–उदयमान भी शुद्धता सहित ज्ञात किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि अशुद्ध राशि में आरम्भिक १२° का उदयमान ज्ञात करना है तो उपरोक्त सूत्र में भुज के स्थान पर १२° रखनेपर शुद्धमान मिलेगा, जबकि पूरी राशि के औसत द्वारा गणना करने पर अशुद्ध मान मिलेगा, क्योंकि यह औसत मान राशिमध्य हेतु ही सही है। दशमसाधन में भी शुद्ध प्रक्रिया का प्रयोग किया जाना चाहिये। ऐसा करने पर षष्ट्यंश वर्ग तक समस्त वर्ग सही बनेंगे।

उपरोक्त चित्र में सभी बारह राशियाँ समान ३०° की हैं, किन्तु उनके स्थूल लङ्कोदयमान क्रमशः २७८, २९९ तथा ३२३ पलों के हैं। इसे बदलकर निम्न प्रकार से भी प्रदर्शित किया जा सकता है :

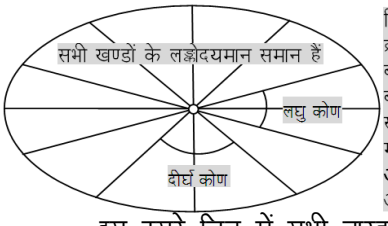

विषुवतवृत पर क्रान्तिवृतप्रक्षेप से बने दीर्घवृत के बारह खण्डों के समान लङ्कोदय मान हों, इस हेतु **असमान कोण** अनिवार्य है।

इस दूसरे चित्र में सभी बारह भाग समान कोण के नहीं हैं, किन्तु उनके लङ्कोदयमान समान हैं : ३०० पलों के। समान कालमान के विभागों में विशेषता यह है कि उनके द्वारा बनाये गये क्षेत्रफल एकसमान हैं, जो केपलर द्वारा खोजे गये नियमों के अङ्ग हैं : समान काल में समान क्षेत्र। चित्र देखने से भी स्पष्ट है कि कोण न्यून हो तो लम्बाई बढ़ जाती है, जिस कारण क्षेत्रफल अपरिवर्तित रहता है। चर–संस्कार द्वारा इष्टस्थानीय (क्रान्तिवृतीय) उदयमान प्राप्त किये जाते हैं तो निम्नोक्त प्रकार का चित्र बनता है :

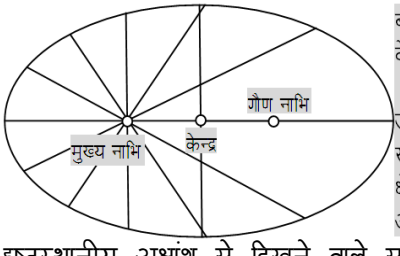

बारह राशियों के इष्टस्थानीय (क्रान्तिवृतीय) उदयमान, जो राशिखण्डों के क्षेत्रफलों के अनुपाती हैं।

इष्टस्थानीय अक्षांश से दिखने वाले सूर्यक्रान्तिवृत की १२ राशियों के परस्पर भिन्न उदयमानों का चित्र है; वैषम्य विषुवत् से दूर जाने पर बढ़ता जाता है। केपलरीय नियमानुसार कोण बराबर हैं, अतः उदय मानों में अन्तर रहेगा, क्योंकि दीर्घवृत में उदयमान क्षेत्रफल–अनुपाती होते हैं, कोण या व्यास के नहीं।

यहाँ द्रष्टव्य है कि केपलर और न्यूटन की विधियों से दीर्घवृत के उपरोक्त असमान खण्डों का क्षेत्रफल ज्ञात करने का आधुनिक गणितीय सूत्र अत्यन्त जटिल है जिसे अनन्त समाकल (Infinite Integral) कहा जाता है। सूर्यसिद्धान्तीय लङ्कोदयवृत शुद्ध दीर्घवृत न होकर उसका भी दीर्घवृत है जिसे दीर्घवृतीय अभिचक्रज (elliptical epicycloid) कहना गणितीय दृष्टि से उचित होगा, क्योंकि क्रान्तिवृत का विषुवतीय प्रक्षेप दीर्घवृतीय होना चाहिये और उक्त दीर्घवृत के केन्द्र को मेरु पर विस्थापित करने से दीर्घवृतीय अभिचक्रज बनेगा, जिसका सूत्र दीर्घवृत के अनन्त समाकल से भी अधिक

कठिन है, अनन्त समाकलों का भी पुनः समाकल करना पड़ेगा और इसके लिये जटिल कम्प्यूटर प्रोग्रामों की आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु मजे की बात है कि सूर्यसिद्धान्त में लङ्कोदयमानों एवं इष्टस्थानीय उदयमानों के सूत्र इतने सरल हैं कि बिना यन्त्रों की सहायता के भी आवश्यक शुद्धता के साथ गणना सम्भव है। इतना ही नहीं, यदि संगणक की सहायता ली जाय तो सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र की जाँच द्वारा मेरुकेन्द्रिक पौराणिक–सैद्धान्तिक सृष्टिविज्ञान की सच्चाई के साक्ष्य भी सुस्पष्ट हो जाते हैं, जो इन सरल सूत्रों की सच्चाई के साक्ष्य हैं। ***यदि ये सरल सूत्र स्थूल होते तो इनकी सहायता से मेरु की ऊँचाई की गणना सम्भव नहीं हो पाती।*** सरलता के साथ–साथ पूर्ण शुद्धता सूर्यसिद्धान्तीय सूत्रों के **दिव्य** होने का प्रमाण है। प्राचीन ऋषियों ने बारम्बार इसपर बल दिया कि मेरु ही ग्रहकक्षाओं एवं सृष्टि का केन्द्र है,किन्तु कलियुगी नक्कारखानों में उनकी आवाज तूती बनकर रह गई। किसी प्राचीन वा आधुनिक विद्वान ने सूत्रों की जाँच का प्रयास नहीं किया।

अब यह देखें कि लङ्कोदयमान को ज्यामितीय रूप से कैसे परिभाषित करें। निम्नोक्त चित्र में ध्रुव Z से आने वाली अक्षांशरेखा क्रान्तिवृत एवं विषुवत वृत को क्रमशः H तथा Θ बिन्दुओं पर काटती है। क्रान्तिवृत एवं विषुवतवृत का निरयन सम्पात बिन्दु E है। क्रान्तिवृत का EH खण्ड प्रथम राशि मेष है, जिसका लङ्कोदयमान EΘ चाप के उदय का मान है, जो विषुवत वृत का भाग है।

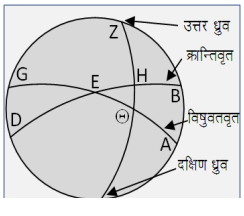

टॉलेमी ने इसकी स्पष्ट व्याख्या **अलमाजेस्ट** (यह बाद का शब्द है जो ग्रीक प्रकृति में अरबी उपसर्ग लगाकर बनाया गया, ग्रन्थ का मूल नाम था Μαθηματικη Συνταζισ, मथमतिक सुंतक्षिस् Mathematical Syntaxis) के बुक–१ के अन्तिम अध्याय में दी है जिससे आधुनिक वैज्ञानिक भी सहमत हैं : देखें A History of Ancient Mathematical Astronomy by Otto Neugebauer, VI-B1,4. Spherical Coordinates, p.1080 : "At sphaera recta the north pole N lies in the horizon and the equator is perpendicular to the horizon. Since the meridian is also at sphaera obliqua perpendicular to the equator the meridian at sphaera obliqua plays the role of horizon at sphaera recta.")। भारतीय टीकाओं की व्याख्यायें भी ऐसी ही हैं। लङ्कोदय के बारे में टॉलेमी के अध्याय का शीर्षक है "Περι Τον Επ' Οροεσ Τεσ Σφαιρασ Αναφορον" अर्थात् "On rising-times (ascensions) at sphaera recta" ("विषुवत पर उदयमान"), जिसमें लङ्कोदय की परिभाषा सही है किन्तु गणित सूर्यसिद्धान्तीय नहीं है। सूर्यसिद्धान्त में सूर्य की परमक्रान्ति का मान २४° पूर्णाङ्क है, जबकि टॉलेमी का मान है २३°:५१′:२०″। इससे भी अधिक अन्तर है राशियों के उदयमान ज्ञात करने की विधि में,जिस कारण फल काफी अन्तर रखते हैं : टॉलेमी के तीनों लङ्कोदयमान हैं क्रमशः २७°:५०′;२९°:५४′;तथा ३२°:१६′, जिन्हें दशगुणित करने पर पलात्मक मान प्राप्त होंगे :२७८:५०, **२९९**,तथा ३२२:४० पल। सूर्य–सिद्धान्तीय मान हैं क्रमशः २७८·३८, **२९९·६५**, तथा ३२१·९६५७४ पल। सूर्यसिद्धान्तीय मध्यराशि वृष का लङ्कोदयमान ३०० पल से लगभग ०·३५ पल की न्यूनता के कारण रविकक्षाकेन्द्र भूकेन्द्र से ८००·६५ योजन की दूरी पर सिद्ध हुआ था, किन्तु टॉलेमी के गणित में यह न्यूनता ०·३५ पल की बजाय १ पल की है (३०० पल से १ पल न्यून),अतः रविकक्षा का योजनात्मक मान समान मान लें तो टॉलेमी का रविकक्षाकेन्द्र भूकेन्द्र से ८००·३५ योजन की अपेक्षा (१ ÷ ०·३४८४ =) २·८७ गुणा अधिक दूरी पर स्थित होगा, अर्थात् भूकेन्द्र से २२९८·१४ योजन की दूरी पर! यह भी द्रष्टव्य है कि ग्रहकक्षाओं का सापेक्ष या निरपेक्ष आकार (योजनात्मक मान) टॉलेमी को बिल्कुल भी ज्ञात नहीं था। पाश्चात्य 'विद्वानों' की जिद है कि कॉपसनिकस से पहले इसका ज्ञान किसी को नहीं था,जबकि सूर्यसिद्धान्त में ग्रहकक्षाओं का योजनात्मक मान दिया गया है और ऊपर दिखाया गया है कि रविकक्षा के सूर्यसिद्धान्तीय मान के आधार पर मेरु की ऊँचाई प्राप्त की जा सकती है। यहाँ समस्या यह है कि सूर्यसिद्धान्तीय रविकक्षा के व्यासार्ध का मान ५५ लाख किलोमीटर से भी कम है,जबकि भौतिक सूर्यकक्षा का व्यासार्ध १४९६ लाख किलोमीटर है। अतः सूर्यसिद्धान्तीय कक्षा भौतिक कक्षा से कई गुणा छोटी है। सभी ग्रहों में यह अन्तर

निम्नोक्त है : बुध की सौरपक्षीय कक्षा दृक्पक्षीय कक्षा से ४३·७४७ गुणी छोटी है, शुक्र की ३२·००२ गुणी,सूर्य २७·२१८,मङ्गल २२·०५०,बृहस्पति ११·९३९ , एवं शनि की ८·८११ गुणी छोटी है! ज्यों –ज्यों हम दूरस्थ ग्रहों की ओर बढ़ते हैं,यह अन्तर नियमित क्रम से घटता जाता है! एक ऐसी कक्षा आनी चाहिये जहाँ सौरपक्षीय कक्षा और दृक्पक्षीय कक्षा में अन्तर शून्य होना चाहिये।इसका गणित क्लिष्ट है, जिसके कुछ प्रमाण २००५ ई· में प्रकाशित ग्रन्थ '**सूर्यसिद्धान्त : दृक्पक्ष तथा सौरपक्ष की गणितीय विवेचना**' नामक ग्रन्थ में दिये गये थे। यह कक्षा दृक्पक्षीय प्रणाली में ४२००० वर्ष की है, जब स्थिर सौरपक्षीय चिदाकाश की तुलना में दृक्पक्षीय भूताकाश १ भगण घूमता है।क्यों न घूमे,भौतिकी के नियमों के अनुसार परमाणु के अन्तवर्ती कणों से लेकर बड़ी से बड़ी मन्दाकिनियाँ अपने अक्षों पर घूर्णन (Spin)कर रही हैं। भौतिक ब्रह्माण्ड अनन्त नहीं है यह सिद्ध हो चुका है,अतः इसका भी घूर्णन होना चाहिये। किन्तु **ब्रह्माण्ड से बाहर की किसी वस्तु की तुलना में ही ब्रह्माण्ड की गति या घूर्णन मापी जा सकती है। समस्त भौतिक पदार्थ तो भौतिक ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत हैं,केवल अभौतिक पदार्थ भौतिक ब्रह्माण्ड से बाहर रह सकते हैं। अभौतिक पदार्थों का संज्ञान भौतिक इन्द्रियाँ नहीं कर सकतीं। अतः भौतिक ब्रह्माण्ड का घूर्णन मापने का एकमात्र उपाय अभौतिक ही हो सकता है, जो भौतिकविज्ञान के कार्यक्षेत्र से बाहर की वस्तु है।** 'प्रागैतिहासिक' सूर्यसिद्धान्त के आधार पर ऐसे निष्कर्ष निकालने पर विकासवादियों को परेशानी होगी, किन्तु सौर सूत्रों द्वारा पौराणिक मेरु पर्वत की ऊँचाई के कई गणितीय एवं साहित्यिक प्रमाण है; सूर्यसिद्धान्त का सबसे बड़ा प्रमाण फलित ज्योतिष है जिसकी जाँच भी वैज्ञानिक सहन नहीं करते।वैज्ञानिकों द्वारा खगोलविज्ञान का जो इतिहास लिखा जाता है वह ग्रीक ज्ञान की महानता से लबालब भरा रहता है, सूर्यसिद्धान्त के किसी योगदान की चर्चा भी नहीं की जाती। किन्तु जिस टॉलेमी महोदय का इतना गुणगान किया जाता है,उन्होंने हिप्पार्कस की तारा सूची चुराई थी यह सिद्ध हो चुका है। टॉलेमी की ग्रहकक्षायें बिना किसी केन्द्र की बेढब हैं और न ही सूत्रों की सङ्गति है। टॉलेमी ने बाद की एक पुस्तक Planetary Hypothesis में ग्रहकक्षाओं के परस्पर अनुपात पर कुछ अटकलें लगाईं,पर उसके मुख्य सिद्धान्तग्रन्थ अलमाजेस्ट में इसकी चर्चा भी नहीं है। कुल मिलाकर यही निष्कर्ष निकलता है कि सूर्यसिद्धान्त द्वारा रविकक्षाकेन्द्र का भूकेन्द्र से भूव्यासार्ध एवं मेरु की ऊँचाई के योगतुल्य होने के तथ्य का टॉलेमी से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि टॉलेमी के गणित में प्रत्येक ग्रहकक्षा का केन्द्र भूकेन्द्र से भिन्न–भिन्न दूरी पर है,अतः टॉलेमी की ग्रहकक्षाओं का कोई एक केन्द्र नहीं है, जो कि एक गम्भीर सैद्धान्तिक विसङ्गति है। टॉलेमी के मॉडल में इस समस्या का कोई समाधान नहीं है, क्योंकि इस मॉडल में भूकेन्द्र तथा ग्रहकक्षाकेन्द्र के बीच की दूरी उत्केन्द्रता (Eccentricity) पर निर्भर करती है जो परम मन्दफलार्ध की ज्या होती है; यह प्रत्येक ग्रह के लिये भिन्न–भिन्न है, अतः ग्रहकक्षाकेन्द्र की भूकेन्द्र से दूरी भी प्रत्येक ग्रह के परममन्दफल पर निर्भर करती है।पर भारतीय आर्षमत समस्त सृष्टि का केन्द्र मेरु को मानती है। यह दूसरी बात है कि प्राचीन मत की गणितीय व्याख्या गणेश दैवज्ञ जैसे महानुभावों की कृपा से लुप्त कर दी गई है।मेरुकेन्द्रिक पौराणिक–सैद्धान्तिक गणित और दर्शन भारतीय मूल का है, आयातित नहीं।

अब टॉलेमी की लङ्कोदयमान–पद्धति देखें। इसके लिये अमेरिका के प्रिंसटन विश्वविद्यालय प्रेस द्वारा प्रकाशित जी·जे· टूमर महोदय का भाष्य नीचे प्रयुक्त किया गया है,जो आंग्लभाषा में एकमात्र उपलब्ध और उत्तम भाष्य माना जाता है। लङ्कोदय की ज्यामिति स्पष्ट करने के जो पिछला चित्र यहाँ दिया गया है, उसमें टॉलेमी की शब्दावली प्रयुक्त की गई है, ताकि उसकी पद्धति की तुलना सूर्यसिद्धान्त से की जा सके। उक्त चित्र में सम्पात E के बाद क्रान्तिवृत पर प्रथम राशि का विषुवतीय प्रक्षेप लङ्कोदयमान है जो विषुवतीय चाप EΘ का मान है। चाप प्रथम राशि के लङ्कोदयमान हेतु चाप EΘ का मान ज्ञात करना उद्देश्य है। सबसे पहले टॉलेमी द्वारा प्रयुक्त सूर्य की परमक्रान्ति का मान लें। टूमर के ग्रन्थ में पृ· ६३ पर टॉलेमी का कहना है कि बारम्बार पर्यवेक्षण द्वारा देखा गया कि सूर्य की सबसे उत्तरी (कर्क) और सबसे दक्षिणी (मकर) अक्षांशों के बीच सदैव ४७°४०′ एवं ४७°४५′ के बीच ही अन्तर रहता है।

टॉलेमी के अनुसार एरातोस्थीनीज और हिप्पार्कस भी इतने मान का ही प्रयोग करते थे। निष्कर्ष के रूप में टॉलेमी ने ३६०° के ११÷८३ भाग को सूर्य की परमक्रान्ति का दोगुना माना और अपने ग्रन्थ में सर्वत्र प्रयुक्त किया। एरातोस्थीनीज और हिप्पार्कस परमक्रान्ति का कौन सा मान प्रयुक्त करते थे इसका एकमात्र प्रमाण टॉलेमी है। टॉलेमी ने अनेक स्थलों पर एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह स्वयं पर्यवेक्षण करके निष्कर्ष निकालने की डीङ्गें हाँकी है,लेकिन हिप्पार्कस की तारासूची को चुराकर टॉलेमी ने निजी पर्यवेक्षण का नतीजा घोषित कर दिया था, जिसपर दो सहस्त्राब्दियों तक पश्चिमी जगत विश्वास करता रहा, किन्तु बींसवी शती में यह सिद्ध हो गया कि उक्त सूची में ताराओं की जो स्थितियाँ दी गई हैं वे टॉलेमी से तीन शती पूर्व हिप्पार्कस के काल के हैं और हिप्पार्कस की खोजों को टॉलेमी ने अपने नाम पर प्रचारित किया ऐसा अब सारे वैज्ञानिक मानते हैं। अतः परमक्रान्ति के मामले में भी टॉलेमी द्वारा निजी पर्यवेक्षण करने के दावे की जाँच होनी चाहिये। टॉलेमी ने सूर्य की परमक्रान्ति का मान २३°:५१′:२०″ बताया, किन्तु आधुनिक भौतिकविज्ञान के सूत्रों द्वारा यह मान ईसापूर्व १३८१ का सिद्ध होता है! जिन्हें सरल साक्ष्य चाहिये वे www.cybersky.com वेबसाइट से मुफ्त का शेयरवेयर डाउनलोड करके इस बात की जाँच कर सकते हैं – स्थान अलेक्जेण्ड्रिया चुनें और जून के अन्त में मध्याह्न का समय लें, उस दिन सूर्य का डाटा खोलने पर क्रान्ति (Declination) का उपरोक्त मान ही आयगा। आश्चर्य की बात है कि ईसापूर्व १३८१ का आँकड़ा टॉलेमी ने ईसा के १५० वर्ष उपरान्त 'निजी पर्यवेक्षण' द्वारा प्राप्त किया, जब परमक्रान्ति का मान ६५२″ विकला घटकर २३°:४०′:२८″ रह गया था! टॉलेमी का दावा था कि उसके द्वारा पर्यवेक्षण से प्राप्त मान २३°:५०′:२०″ एवं २३°:५२′:३०″ के बीच ही थे, जिस कारण उसने औसतमान २३°:५१′:२०″ (२३°:५१′:२५″ औसत था) स्वीकृत किया, जिसमें उसके शब्दों में १५०″ से अधिक की त्रुटि सम्भव नहीं थी। किन्तु उसने परमक्रान्ति का जो मान दिया उसमें त्रुटि ६५२″ की थी, अतः सम्भावना इसी बात की है कि डीङ्ग मारने की बीमारी के कारण उसने प्राचीन मिश्र, मेसोपोटामिया या भारत के किसी स्त्रोत से परमक्रान्ति का मान चुराया। इस सन्दर्भ में यह द्रष्टव्य है कि जो लोग सूर्यसिद्धान्त को पर्यवेक्षण पर आधारित दृक्पक्षीय ग्रन्थ मानते हैं और अभौतिक ग्रहदेवों के सौरपक्षीय गणित की सम्भावना को नहीं स्वीकारते उन्हें नहीं भूलना चाहिये कि **सूर्यसिद्धान्त की परमक्रान्ति ईसापूर्व २७६० की दृक्पक्षीय परमक्रान्ति के तुल्य थी!**

टॉलेमी ने न तो पर्यवेक्षण द्वारा परमक्रान्ति का मान प्राप्त किया,और न ही पूर्वकाल के किसी पर्यवेक्षक ने यह मान खोजा था।यह सूर्यसिद्धान्तीय परमक्रान्ति का ही विकृत रूप था जिसका प्रमाण टॉलेमी के ही ग्रन्थ अलमाजेस्ट में है।टॉलेमी ने परमक्रान्ति का जो मान प्रयुक्त किया वह उनके तथाकथित 'पर्यवेक्षण' का औसत मान २३°:५१′:२५″ न होकर २३°:५१′:२०″ था, जिसका कारण वे स्वयं कहते हैं :कर्क और मकर के बीच सूर्य के अक्षांश में जो अन्तर होता है वह परमक्रान्ति का दोगुना होता है जो उनके शब्दों में ३६०°का ११÷८३वाँ भाग था।गणना करने पर यह २३°:५१′:१९.५२″ निकलता है,जिसे टॉलेमी ने २३°:५१′:२०″लिखा।अतः टॉलेमी द्वारा प्रयुक्त मान शतियों पूर्व से चले आ रहे पूर्णाङ्कों के अनुपात की गणनप्रणाली पद आधारित था जिसे 'रेशनल नम्बर' कहा जाता है। परमक्रान्ति का दोगुना, अर्थात् कर्क और मकर के बीच सूर्य के अक्षांश का अन्तर था ३६०°× ११ ÷ ८३ ; सूर्य–सिद्धान्तीय परमक्रान्ति को इस पद्धति में लिखा जाय तो ३६०°× ११ ÷ ८२.५ लिखना पड़ेगा जो दशमलव के कारण यवनों को रास नहीं आता। अतः विषुवत से सूर्य कितना उत्तर और दक्षिण विस्थापन करते हैं इसे यदि अक्षांशवृत के अनुपात में दर्शाया जाय तो सूर्यसिद्धान्तीय परमक्रान्ति को स्थूल रूप से ११÷८३ ही लिखना पड़ेगा।

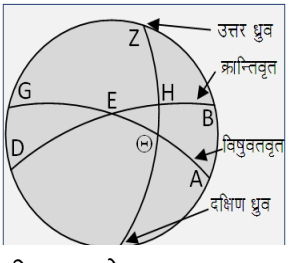

टॉलेमी ने परमक्रान्ति का मान २३°:५१′:२०″ बताया,उसी को आधार बनाकर लङ्कोदय मान ज्ञात करने की टॉलेमी की विधि की जाँच करें। टूमर ने टॉलेमी का निम्नोक्त शब्दों में अनुवाद दिया

है, जिसे सुस्पष्ट करने के लिये इटैलिक्स में उपपत्ति प्रस्तुत लेखक ने जोड़ी है।

ज्यापिण्ड 2ZB : ज्यापिण्ड 2BA= (ज्यापिण्ड 2ZH : ज्यापिण्ड 2HΘ) × (ज्यापिण्ड 2ΘE : ज्यापिण्ड 2EA)

किन्तु 2ZB = १३२°:१७′:२०″ *(= १८०° – 2BA; उत्तर ध्रुव से विषुवत ९०° है तथा उसमें परमक्रान्ति BA न्यून करें तो ZB मिलता है)*

अतः इसका ज्यापिण्ड = १०९:४४:५३ *(=१३२°:१७′:२०″ के आधे की ज्या को दोगुना करके फल को ६० गुणा करके कलात्मक बनाया)* ।

चूँकि 2BA= *द्विगुणित परमक्रान्ति* = ४७°:४२′:४०″, अतः इसका ज्यापिण्ड = ४८:३१:५५ *(परमक्रान्तिज्या का दोगुना करके फल को ६० गुणा करके कलात्मक बनाया)* ।

2ZH = १५६°:४०′:०१″ *(= १८०° – 2ΘH; ३०° पर क्रान्ति का मान है ΘH जिसे ज्ञात करने का सूत्र है : '३०° की ज्या × परमक्रान्तिज्या' के गुणनफल का चाप)* । Chord *को* Crd *लिखें :*

Crd.2ZH = ११७:३१:१५ *(=१५६°:४०′:०१″ के आधे की ज्या के दोगुने को ६० गुणा करके कलात्मक बनाया)* ।

2ΘH= *३०° पर क्रान्ति का दोगुना* =२३°:१९′:५९″

Crd.2ΘH = २४:१५:५७ *(=२३°:१९′:५९″ के आधे की ज्या के दोगुने को ६० गुणा करके कलात्मक बनाया)* ।

अब उपरोक्त मूल प्रश्न को ऐसे लिखें :

ज्यापिण्ड 2ΘE ÷ ज्यापिण्ड 2EA = (ज्यापिण्ड 2ZB ÷ ज्यापिण्ड 2BA)÷(ज्यापिण्ड 2ZH ÷ ज्यापिण्ड 2ΘH)

= (१०९:४४:५३ ÷ ४८:३१:५५) ÷ (११७:३१:१५ ÷ २४:१५:५७) = ५४:५२:२६ ÷ ११७:३१:१५

अन्तिम हल 'ज्यापिण्ड 2ΘE ÷ ज्यापिण्ड 2EA = ५४:५२:२६ ÷ ११७:३१:१५' को निम्नरीति से लिखें : ज्यापिण्ड 2ΘE ÷ ज्यापिण्ड 2EA = ५६:०१:५३÷ १२० चूँकि 2EA=१८०°,अतः ज्यापिण्ड 2EA=१२० (९०° की ज्या १ है जिसका कलात्मक मान ६० है, अत : १८०° का ज्यापिण्ड इसका दोगुना १२० होगा) । फलस्वरूप 'ज्यापिण्ड 2ΘE' = ५६:०१:५३ ५६:०१:५३ के आधे का चाप '2ΘE' का मान है = २७°:५०′:०६″

टॉलेमी २७°:५०′ बतलाते हैं।अब सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र में टॉलेमी की परमक्रान्ति डालकर गणना करें : *[(Sin 30 × Cos 23:51:20) ÷ Cos(23:51:20 × Sin 30)]* उपरोक्त का चाप लेने पर फल २७°:५१′:५०.५६″ (अंशात्मक लङ्कोदयमान) प्राप्त होता है (जिसे दश गुणित करने पर प्रथम राशि का पलात्मक लङ्कोदय मान प्राप्त होता है),जो टॉलेमी के २७°:५०′:०६″ से १०४″अधिक है।गोल–गणित के अनुसार टॉलेमी की विधि लगभग सही है। तब क्या सूर्यसिद्धान्तीय सूत्र गलत है जो भिन्न फल बता रहा है? उक्त तथाकथित त्रुटि को रविकक्षा–व्यासार्ध के अनुपात में बदलकर देखें : दोनों अंशात्मक लङ्कोदय मानों की ज्या का अनुपात १+(१०४१.७६) मिलता है।अर्थात् ज्या में तथाकथित त्रुटि की मात्रा रवि–कक्षाव्यासार्ध का १०४२ वाँ भाग है। ऊपर हम देख चुके हैं कि भूव्यासार्ध एवं मेरु की ऊँचाई का योग करें तो रविकक्षाव्यासार्ध का ८६१ वाँ भाग होता है। प्रायः उतना ही मान इस बार भी पाते हैं :यदि मानें कि टॉलेमी का रविकक्षाव्यासार्ध सूर्यसिद्धान्तीय मान के तुल्य था तो उक्त तथाकथित त्रुटि रवि–कक्षाकेन्द्र को भूकेन्द्र से रविकक्षाव्यासार्ध ÷ १०४२ की दूरी पर विस्थापित करेगी। सूर्यसिद्धान्तीय रविकक्षा का व्यासार्ध ६८९४४१.७६००३६६ योजन को १०४१.७६३१५७ से विभक्त करें तो यह विस्थापन ६६१.८ योजन का निकलता है। यह मेरु सहित भूव्यासार्ध के बराबर(८००.६५ योजन) तो नहीं, किन्तु स्थूल रूप से तुल्य है।अन्तर का कारण यह है कि हमने केवल प्रथम राशि के लङ्कोदयमान के आधार पर उक्त गणना की।मध्यराशि का लङ्कोदय मान टॉलेमी २९९ पल बतलाते हैं, जिसे भूकेन्द्रिक मानें तो सूर्यसिद्धान्तीय रविकक्षाकेन्द्र भूकेन्द्र से रविकक्षाव्यासार्ध के ५०५.७८२ वाँ भाग तुल्य दूरी पर विस्थापित होना चाहिये।तृतीय राशि का लङ्कोदयमान टॉलेमी के अनुसार ३२२.६६६६६७ पल है, जिसका सूर्यसिद्धान्तीय मान से तुलना करें तो रविकक्षाकेन्द्र का भूकेन्द्र से विस्थापन रविकक्षाव्यासार्ध का ५१४.८९वाँ भाग मिलता है।१०४१.७६,५०५.७८ एवं ५१४.८९ का औसत है ६८७.४८, जो सूर्यसिद्धान्तीय अनुपात ८६१.१ के अधिक निकट है। तीनों राशियों के लङ्कोदयमानों में तीन तरह के अनुपात मिलते हैं, जिससे स्पष्ट है कि टॉलेमी की विधि स्थूल है और भूकेन्द्रिक नहीं है, अन्यथा प्रत्येक मामले में पृथक परिणाम नहीं मिलते।इसका कारण यह है कि

टॉलेमी ने पृथ्वी को शुद्ध गोल माना,जो गलत है। अतः उक्त गणित में ZH, HΘ, ZB ,AB अक्षांशीय चापों की लम्बाई क्रान्तिवृतीय चाप EH, BH तथा विषुवतीय चाप EΘ, AΘ से न्यून होना चाहिये।

किन्तु इस गणना से इतना स्पष्ट हो जाता है कि टॉलेमी का गणित लगभग कामचलाउ तो था किन्तु मेरुकेन्द्रित न होकर स्थूल रूप से भूकेन्द्रित था, जैसा कि अलमाजेस्ट में स्वीकारा भी गया है। **अतः टॉलेमी को सूर्यसिद्धान्तीय गणित का स्रोत बतलाना सरासर गलत है।**तथ्य विपरीत है ःराशियों के उदयमानों के सूत्र सिद्ध करते हैं कि टॉलेमी रविकक्षाकेन्द्र भूकेन्द्र को ही मानते थे,पर प्रत्येक ग्रह की कक्षा वे पृथक–पृथक देते हैं,जिनकी भू–केन्द्र से दूरी उत्केन्द्रता (= मन्दफलार्धज्या) की अनुपाती होती है। इसी कारण टॉलेमी ग्रहकक्षाओं के सापेक्ष वा निरपेक्ष मान पर कुछ भी कहने से कतरा गये। कोई सिद्धान्त अपने पाँव पर खड़ा होता है तो उसमें ऐसी गम्भीर विसङ्गतियाँ नहीं होती।कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा लेकर बेमेल बैसाखियों के बलपर जो सिद्धान्त खड़ा किया जाता है वह ग्रहों का कामचलाऊ गणित भले ही दे दे, ग्रहचार की सैद्धान्तिक व्याख्या करने में सर्वथा असमर्थ रहता है। टॉलेमी भौतिकवादी थे, ज्योतिष में दृक्पक्ष को मानते थे, किन्तु भौतिक सिद्धान्त नहीं दे पाये जिसके लिये पश्चिम को न्यूटन की बाट जोहनी पड़ी। ज्योतिष में भौतिकवाद को प्रश्रय देने का दुष्परिणाम यह हुआ कि भौतिकी का विकास होने पर ज्योतिष को त्याग दिया गया। इसके विपरीत अभौतिक वेद–विज्ञान के अभौतिक अङ्ग 'ज्योतिष' का सिद्धान्त होने के कारण सूर्यसिद्धान्त सदा से ज्योतिष का सैद्धान्तिक आधार रहा है। भौतिकविज्ञान के आधार पर सूर्य सिद्धान्त को तौलने की चेष्टा ही समस्याओं की जड़ है। प्रस्तुत लेख में जो प्रमाण दिये गये हैं वे इतना सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं कि मेरुकेन्द्रिक खगोलविज्ञान पुराणकारों की बकवास नहीं था,इसके पीछे ऋषियों का दिव्य गणित था जिसका पुननिर्माण एक चुनौती है।सूर्यसिद्धान्त पर आधुनिक भौतिक–वादी विज्ञान थोपने की चेष्टा करने वालों को पहले सूर्यसिद्धान्त का गूढ़ गणित समझने का प्रयास करना चाहिये, जो सूर्यसिद्धान्त के अन्तिम श्लोक के अनुसार "**अत्यद्भुततम् लोके रहस्यम् ब्रह्म–सम्मितम्**" है। जो सूर्यसिद्धान्त का ग्रहगणित नहीं जानते वे इसे अशुद्ध या 'आउट–ऑव–डेट' कहने में लज्जा का भी अनुभव नहीं करते! ❀❀❀❀❀